उपमा का लक्षण : एक समन्वयात्मक अनुशीलन

ओंकारनाथ पाठक#, कुमार नृपेन्द्र पाठक*
onkarnpathak@gmail.com, nri.pathak@gmail.com

सार

वैदुष्यपूर्ण विवेचन एवं खण्डन-मण्डन के कारण अलङ्कार के वास्तविक स्वरूप का बोध ही साधारण छात्रों को दुर्ग्राह्य हो जाता है। इसलिए प्रस्तुत प्रपत्र में अलङ्कार के महत्त्व एवं त्रिधा वर्गीकरण को प्रस्तुत करते हुए विभिन्न आचार्यों द्वारा दिए गए उपमा के लक्षण का समन्वयात्मक अनुशीलन किया गया है, जिससे उपमा के विविध आयाम को समझने का अवसर प्राप्त होता है। साथ ही उपमा अलङ्कार के विषय में किस आचार्य का क्या मत है, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

अलङ्कार का महत्त्व-

साहित्यशास्त्र का प्राचीन नाम अलङ्कारशास्त्र ही है। प्रारम्भ में अलङ्कार शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में था। काव्यगत सभी विशेषताओं का अध्ययन इसके ही अन्तर्गत किया जाता था। लेकिन ९वीं शती के पश्चात् इसका प्रयोग मात्र उपमा-रूपकादि अलङ्कारों में संकुचित हो गया और आज भी अलङ्कार का अर्थ काव्यशरीर के शोभावर्धक तत्त्व के रूप में समझा जाता है।[१] नाट्यशास्त्र में अलङ्कार शब्द की कोई व्युत्पत्ति या परिभाषा नहीं की गयी है, फिर भी इस शब्द का प्रयोग बहुशः किया गया है। जिन संदर्भों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है, उससे इस शब्द के सौन्दर्यजनकत्व का भान होता है। भरतमुनि की दृष्टि में ललित तथा सौष्ठव ही अलंकार है – "ललितं सौष्ठवं यच्च सोऽलङ्कारः परो मतः।" [२]

अलङ्कार-शास्त्र के आद्य आचार्य भामह ने अलङ्कार को काव्यशोभा का आधायक तत्व स्वीकार किया है।[३] उद्धृत श्लोक के उत्तरार्द्ध का दृष्टान्त (शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार) उभयनिष्ठ है; यह सामान्य रूप से अलङ्कारवाद का ही समर्थन करता है। "रूपकादिरलंकारस्तस्यान्यैबहुधोदितः। न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।।" (का० १-१४)। अर्थात् उस (काव्य) के अलंकार (जो) रूपक आदि हैं, उनका कुछ आलंकारिकों ने अनेक प्रकार से उल्लेख किया है। रमणी का सुन्दर मुख भी अलंकार के बिना नहीं शोभता। अतः अलङ्कार काव्य का अनिवार्य धर्म है।[४]

व्यक्तिविवेक में कहा गया है-

Asst. Prof. Department of Sanskrit, Maulana Azad College, Kolkata
* विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७.

१ पाण्डेय, डा० रमेश कु०; "भरतमुनि- साहित्यशास्त्र के आदि आचार्य", पृ०-१०८।

२ ना० शा०, १६/२४।

३ शर्मा, देवेन्द्रनाथ।"काव्यालंकार", भूमिका पृ०-४०।

४ शर्मा, देवेन्द्रनाथ।"काव्यालंकार; पृ०-७।

"विनोत्कर्षापकर्षाभ्यां स्वदन्तेऽर्था न जातुचित्।

तदर्थमेव कवयोऽलङ्कारान् पर्युपासते।।"(व्यक्तिविवेक २-१४)

(उत्कर्ष या अपकर्ष के बिना वस्तु में स्वाद नहीं आ पाता है, इसलिए कवि अलङ्कारों का विधान करता है।)

जयदेव अलङ्कार के महत्व को बतलाते हुए कहते हैं-

"अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।।"(चन्द्रालोक, प्रथम मयूख)

अर्थात् जैसे उष्णता रहित अग्नि का होना संभव नहीं है, वैसे ही अलङ्कार रहित काव्य भी कथमपि सम्भव नहीं है।

"काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्" और "सौन्दर्यमलङ्कारः" आदि वचनों से स्पष्ट है कि काव्य में अलङ्कार अपरिहार्य तत्त्व के रूप में उपस्थित है। यहां चमत्कारोत्पादक यावन्मात्र तत्त्व को ही वामन ने अलङ्कार शब्द से व्यवहृत माना है।[५]

मम्मट ने काव्यप्रकाश में अलंकार का लक्षण किया है-

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।"[६]

अर्थात् जो काव्य में विद्यमान उस (शब्द या अर्थ रूप अंगी) रस को अंगों के द्वारा (नियमेन नहीं, अपितु) कभी-कभी उपकृत (उत्कर्षयुक्त) करते हैं , वे अनुप्रास और उपमा आदि (शब्दालङ्कार और् अर्थालङ्कार शरीरके शोभाधान द्वारा परम्परया शरीरी आत्मा के उत्कर्षजनक) हार आदि (दैहिक अलङ्कारों) के समान (काव्य के) अलङ्कार होते हैं।

मम्मटकृत लक्षण की व्याख्या करते हुए प्रदीपकार अलङ्कार के तीन लक्षण बताते हैं[७] –

१) रसावृत्तित्वे सति रसोपकारकत्वम्।

२) रसोपकारकत्वे सति रस-अनियतस्थितिकत्वम्।

३) अनियमेन रसोपकारकत्वमलङ्कारत्वम्।

अर्थात्

१) रस में न रहते हुए भी रसोपकारकत्व ।

२) रस का उपकारक होते हुए भी रस में नियमतः स्थित न रहने वाला।

अर्थात् कहीं रहता है, कहीं नहीं भी रहता है।

३) अनियमित रूप से रसोपकारकत्व।|

अर्थात् कहीं रस का उपकार करता है, कहीं नहीं भी करता है।|

"उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तमङ्गमिति यायावरीयः" कहकर राजशेखर ने रसोपकारकत्व के कारण अलंकार को सप्तम् वेदांग कहा है।[८]

---

५ द्विवेदी, डा० त्रिलोकीनाथ, अलंकारसर्वस्वम्, भूमिका पृ०-११।

६ काव्यप्रकाश, अष्टम् उल्लास, सूत्र-८७।

७ द्विवेदी, डा० त्रिलोकीनाथ, अलंकारसर्वस्वम्, भूमिका पृ०- १४।

८ अलंकार चन्द्रिका, पृ०-१५।

अलंकारचंद्रिका में आचार्य वैद्यनाथ ने अलंकार का लक्षण किया है-

"अलङ्कारत्वं च रसादिभिन्ना व्यंग्यभिन्नत्वे सति शब्दार्थान्तरनिष्ठा या विषयतासम्बन्धावच्छिन्ना चमत्कृतिजनकतावच्छेदकता तदवच्छेदकत्वम्।"[९]

अर्थात् रस आदि से भिन्न एवं व्यंग्य आदि से भिन्न रहते हुए भी काव्य में चमत्कार को उत्पन्न करने वाला वह तत्त्व जो शब्द और अर्थ में रहता है, वह अलङ्कार कहलाता है। आचार्य वैद्यनाथ के लक्षण से स्पष्ट है कि वे अलङ्कार को रस का उपकारक मानते हुए वाच्य भी मान रहे हैं जिससे कि रस और ध्वनि से अलङ्कार को पृथक रूप में प्रतिष्ठत किया जा सके।

अलङ्कारों का त्रिधा विभाजन

सामान्य रूप से सभी आलङ्कारिकों ने अलङ्कारों का त्रिधा विभाजन किया है-

१) शब्दालङ्कार।
२) अर्थालङ्कार।
३) उभयालङ्कार।

इस वर्गीकरण का आधार चमत्कार-प्रकार ही है जो सामान्य रूप से सभी अलङ्कारों का परस्पर भेदक है। एक अलङ्कार के चमत्कार से भिन्न चमत्कार की प्रतीति होने पर काव्यशास्त्रियों ने उसे अलग अलङ्कार कहा। 'यो हि यदाश्रितः स तदलङ्कारः' इत्यादि सिद्धान्त इसे स्पष्ट कर देते हैं कि जहाँ चमत्कार शब्दाश्रित होगा, वहाँ शब्दालङ्कार होगा तथा जहाँ अर्थाश्रित चमत्कार होगा, वहाँ अर्थालंकार होगा। इसी प्रकार जहाँ शब्दार्थोभयगत चमत्कार होगा, वहाँ उभयालंकार होगा।[१०]

अर्थालङ्कारों का अष्टधा वर्गीकरण आचार्य रुय्यक ने किया है[११]- १) सादृश्य, २)विरोध, ३) शृंखलाबद्ध, ४) तर्कन्याय, ५) वाक्यन्याय, ६) लोकन्याय, ७) गूढार्थप्रतीति और ८)चित्रवृत्ति। सादृश्याश्रित अलङ्कारों को वाच्यौपम्यमूलक और गम्यौपम्यमूलक वर्ग में बाँटा। वाच्यौपम्यमूलक भी भेदाभेदतुल्यत्व और अभेदप्रधान में वर्गीकृत है। उपमा अलङ्कार को भेदाभेदतुल्यत्व वर्ग में रखा गया है।

उपमा का महत्व

शब्दपरिवृत्तिसहत्व अर्थालङ्कार का स्वरूप है। अर्थात् जहाँ शब्द का परिवर्तन कर उसके समानार्थी शब्द को रख देने पर भी अर्थ में (चमत्कार में) कोई परिवर्तन नहीं होता है, वहाँ अर्थालङ्कार होता है। "अर्थालंकाररहिता विधवैव सरस्वती" कहकर अग्निपुराण में अर्थालङ्कार की महत्ता स्वीकार की गयी है।[१२] सादृश्यमूलक सभी अलङ्कारों के मूल में उपमा को स्वीकार किया गया है -

९ वही, पृ०-२।
१० द्विवेदी, डा० त्रिलोकीनाथ, अलंकारसर्वस्वम्, भूमिका पृ०- ४५।
११ वहीं , भूमिका, पृ०-३०।
१२ अग्निपुराण, ३३४/२।

सम्प्रत्यर्थालङ्काराणां प्रस्तावः। तन्मूलं चोपमेति। ।[१३]

और भी-

उपमा प्रपञ्चश्च सर्वोऽलङ्कार इति विद्वद्भिः प्रतिपन्नमेव।[१४]

नाट्यशास्त्र में भी भरत ने उपमा को ही पहले रखा है-

"उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा।

काव्यस्यैते ह्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्त्तिताः ।।"[१५]

राजशेखर ने उपमा को अलङ्कारों में मूर्द्धाभिषिक्त, काव्य का सर्वस्व तथा कवि-कुल की माता कहा है-

"अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।

उपमा कविवंशस्य मातैरिति मतिर्मम।।"[१६]

वामन ने प्रतिवस्तु प्रभृति अनेक अलङ्कारों को उपमा का प्रपंच माना है- "प्रतिवस्तुप्रभृतिरुपमाप्रपंचः"।[१७] अनेक अलङ्कारों को रुद्रट ने भी औपम्य का ही भेद माना है (भले ही यह अलङ्कारों में स्पष्ट रूप से दृष्ट न हो)।[१८] "सर्वेष्वलङ्कारेषूपमा जीवितायते" कहकर महिमभट्ट ने भी यही सिद्ध किया है।[१९]

अर्वाचीन आलङ्कारिकों में अप्पयदीक्षित ने भी उपमा के महत्व को स्वीकारा है-

"उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद् विदां वरम्।।"[२०]

अर्थात् उपमा ही एक (मूल) नटी है जो चित्र (काव्य) की भूमिका के विविध रूपों में अवतीर्ण होकर अपने नृत्य से सहृदय का अनुरञ्जन करती है। विभिन्न अलङ्कार उपमा शैलूषी के ही भूमिका-भेद तथा नर्तन हैं।[२१] उपमा को यहाँ माया नटी या प्रकृति नटी की उपमा दी गई है।

पुनः कहा गया है-

"तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मजानादिवोपमाज्ञानात्।

जातं भवतीत्यादौ निरुप्यते निखिल भेदा सा।।"[२२]

यहाँ ब्रह्मजानादिवोपमाज्ञानात् पद से स्पष्ट करते हैं- "ब्रह्मज्ञानविजाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" सिद्धान्तानुसार ही उपमा के ज्ञान से समस्त अर्थालङ्कारों का ज्ञान हो जाता है।

१३वामन, का० सू० वृ०, पृ०-१८५।
१४ ना० शा०, अभिनवभारती पृ०-३२१।
१५ ना० शा०, १६/४०।
१६ मिश्र, केशव, अलंकारशेखर पृ०-३२।
१७ का०सू०वृ० ४/३/१।
१८ रुद्रट काव्यालंकार, ८/२-३।
१९ महिमभट्ट, व्यक्तिविवेक ।
२० चित्रमीमांसा, पृ०-६।
२१ अलंकारसर्वस्वमीमांसा, पृ०-२०४-५।
२२ वहीं

उपमा के लक्षण

नाट्यशास्त्र को ही काव्यशास्त्रीय चिन्तन परम्परा का आदिस्रोत माना गया है। उपमा को सर्वप्रथम अलङ्कार के रूप में प्रतिष्ठित करके उन्होंने इसकी महत्ता सिद्ध की।[२३] सादृश्यमूलक अलङ्कार "उपमा" काव्यबन्ध में किसी एक या अनेक से साधारण आकृति अथवा गुणवत् सादृश्य के आधार पर समानता प्रदर्शित करता है- यह उपमा का सामान्य लक्षण भरत प्रतिपादित है।

१. " यत्किञ्चित काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते।
उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृति समाश्रया।।"[२४]

उपमा का लक्षण अन्य आचार्यों के मत में इस प्रकार है-

२. भामहकृत लक्षण-
"विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा।।"[२५]

३. दण्डीकृत लक्षण-
"यथाकथञ्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सा ज्ञेयाः प्रपञ्चोऽयं निदर्श्यते।।"[२६]

४. उद्भटकृत लक्षण-
"यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययोः।
मिथोविभिन्नकालादि शब्दयोरुपमा तु तत्।।"[२७]

५. वामनकृत लक्षण-
"उपमानोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा।"[२८]

६. रुद्रट-
"उभयोः समानमेकं गुणादिसिद्धं भवेद्यथैकत्र ।
अर्थेऽन्यत्र तथा तत्साध्यत इति सोपमा त्रेधा।।"[२९]

७. कुन्तक-
"विवक्षित परिस्पन्दमनोहारित्वसिद्धये।
वस्तुनः केनचित् साम्यं तदुत्कर्षवतोपमा।।"[३०]

---

२३ ना० शा०, १६/४०।
२४ वही, १७/४४।
२५ काव्यालंकार २/३०।
२६ काव्यादर्श, २/१३।
२७ काव्यालंकारसंग्रह, १/३२।
२८ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४/२/१।
२९ काव्यालंकार ४/१।
३० वक्रोक्तिजीवितम्, ३/३०।

८. अग्निपुराण-

"किञ्चिदादाय सारुप्यं लोकयात्रा प्रवर्तते।
समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिनः।।"[३१]

९. भोज-

"प्रसिद्धेरनुरोधेन यः परस्परमर्थयोः।
भूयोऽवयवसामान्ययोगः सेहोपमा मता।।"[३२]

१०. हेमचन्द्र-

"हृद्यं साधर्म्यमुपमा।"[३३]

११. मम्मट-

"साधर्म्यमुपमा भेदे।"[३४]

१२. जयदेव-

"उपमा यत्र सादृश्यं लक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।"[३५]

१३. रुय्यक-

"उपमानोपमेययोः साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे उपमा।"[३६]

१४. विश्वनाथ-

"साम्यं वाच्यं वैधर्म्यं वाक्यैक उपमा द्वयोः।" [३७]

१५. शोभाकर मिश्र-

"प्रसिद्धगुणेनोपमानेनाप्रसिद्धगुणस्योपमेयस्य सादृश्योपमा।"[३८]

१६. विद्याधर-

"विलसति सति साधर्म्ये स्यादुपमानोपमेययोरुपमा।"[३९]

१७. विद्यानाथ-

"स्वतः सिद्धेन भिन्नेन समस्तेन च धर्मतः।
साम्यमन्येन वर्ण्यस्य वाक्यं चेदेकमोपमा।।"[४०]

१८. अप्पयदीक्षित-

---

३१ अग्निपुराण, अध्याय-३३४।
३२ सरस्वतीकण्ठाभरण, ४-५।
३३ काव्यानुशासन, ।
३४ का० प्र०-१०/१२५।
३५ चन्द्रालोक, ।
३६ अलंकारसर्वस्व, सूत्र-१२।
३७ सा०द०।
३८ अलंकाररत्नाकर।
३९ एकावली।
४० प्रतापरुद्रीय।

"उपमितिक्रियानिष्पत्तिमत्सादृश्यवर्णनमुपमा। स्वनिषेधापर्यवसायि सादृश्यवर्णनमुपमा। इति द्विविधमप्येतदुपमा सामान्यलक्षणम्।"[४१]|

१९. पण्डितराज जगन्नाथ-

"सादृश्यं सुन्दरं वाच्यार्थोपस्कारकम् उपमालंकृतिः।"[४२]

इसप्रकार हमें उपमा अलङ्कार के कई लक्षण मिलते हैं। इन लक्षणों के समन्वयात्मक विवेचन से हमें उपमा का एक बहुआयामी स्वरूप प्राप्त हो सकता है।

उपमा के लक्षणों का विवेचन:-

१. भरत प्रतिपादित लक्षण में उपमा को गुण और आकृति पर आश्रित बतलाया गया है। अर्थात् दो वस्तुओं में गुण और आकृति का सादृश्य होने से एक वस्तु की दूसरे के साथ तुलना की जाती है। अपने लक्षण में काव्यबन्ध की चर्चा करके भरत ने सादृश्य में चारुता का प्रकारान्तर से निर्देश किया जिसे पण्डितराज ने अनिवार्य एवं अपरिहार्य सिद्ध किया। इस लक्षण में भरत ने किञ्चित् का प्रयोग करके "किञ्चित् वैशिष्ट्य" का आधान किया है। फलतः "जिस किसी प्रकार से सादृश्य की तुलना" का अवकाश नहीं है।

अभिनवभारती में इस लक्षण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि भरतोक्त लक्षण में 'गौरिव गवयः' में उपमालङ्कार नहीं है। लक्षण में प्रयुक्त 'बन्ध' पद का अर्थ गुम्फ, भणिति और वक्रोक्ति है । ये सब पर्याय हैं। गुण से रहित काव्य नहीं होना चाहिए, फलतः काव्य में गुणों की अनिवार्यता के लिए ही प्रासादादि में गुण शब्द की योजना करके उपमाका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं- "शशाङ्कवत् प्रकाशन्ते ज्योतीषीति भवेत् तु या"।

२. भामह ने अपने लक्षण में 'देशकालक्रियादिभिः' का प्रयोग करके यह स्पष्ट किया है कि गुण आदि का साम्य देश , काल, क्रिया आदि के आधार पर देखा जाता है। यद्यपि उपमान और उपमेय न तो एक स्थान के होते हैं , न एक काल के और न ही उनकी क्रियाएँ समान होती हैं तथापि किञ्चित् गुण मात्र की समानता के कारण भी उनकी तुलना की जाती है।

'विरुद्धेन' पद का अर्थ यहाँ विरोधी नहीं, बल्कि भिन्न है। दो भिन्न वस्तुओं में साम्य उपमा है, किन्तु सर्वात्मना साम्य असम्भव है। दो वस्तुएँ हर तरह से एक जैसी होती हो, यह तो अकल्पनीय है और ऐसी दशा में उपमा की सम्भावना ही समाप्त हो जाएगी। फलतः 'गुणलेशेन' पद का प्रयोग हुआ है।

अर्थात् संसार में हर वस्तु एक- दूसरे से भिन्न होती है और कवि की प्रतिभा दो वस्तुओं में गुणों के किञ्चित् साम्य के आधार पर उपमा की योजना करती है।

३. दण्डी ने उपमा का लक्षण देते हुए कहा है- "जहाँ, जिस किसी प्रकार से समानता स्फुट रूप में प्रतीत होती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।" सादृश्य की प्रतीति शब्द से अभिधान के द्वारा या उसकी अर्थतः व्यञ्जना के द्वारा अपेक्षित होती है। लक्षण में 'उद्भूतं प्रतीयते' में उद्भूत पद क्रियाविशेषण के रुप में माना गया है (उद्भूतं प्रतीयते= उद्भूत रूप से प्रतीत होता है)। किन्तु बहुत बार वाचक शब्द का प्रयोग न करने पर भी सादृश्य की प्रतीति होती

४१ चित्रमीमांसा-पृ०-२०।

४२ रसगंगाधर,पृ०-२४८।

है। फलतः चातुर्येण 'प्रतीयते' क्रिया का यहाँ प्रयोग किया गया है ताकि व्यङ्ग्य रूप से उसका अन्तर्भाव हो जाए। उपमा में यह प्रतीति उद्भूत रूप में ही स्वीकारी गयी है, न कि रूपकादिवत् आरोपित (भेदस्य परिस्फुटत्वादुपमा-नोपमेययोः। रूपके त्वारोपः)। फलतः दो तरह से उपमा को व्यक्त करते हैं- अभिधीयमान सादृश्योपमा और प्रतीयमान सादृश्योपमा।

४. उद्भट ने उपमेय और उपमान के मनोहारी साधर्म्य को उपमा कहा और भामह के तरह ही देश, काल आदि की भिन्नता को भी स्वीकारा।

५. वामन ने भी भमह के लक्षण को ही सूत्रबद्ध किया। गुण के लेश मात्र से उपमान की उपमेय के साथ समानता उपमालङ्कार है। यहाँ गुण-लेश को लौकिकी उपमा का लक्षण बतलाया गया है और 'गुणबाहुल्यताश्च कल्पिता' से कल्पितोपम का निर्देश किया गया है। कल्पितोपमा लोकप्रसिद्ध नहीं है। गुण-बाहुल्य से उक्त उत्कर्ष और अपकर्ष की कल्पना से कल्पितोपमा का निर्णय होता है।[४३]

६. रूद्रट ने भी उपमेय और उपमान में एक समान गुण या साधारण धर्म का सद्भाव उपमा के लिए आवश्यक माना है। एक तरफ गुण-आकृति तथा दूसरी तरफ अर्थ में साधर्म्य यहाँ बतलाया गया है।

७. कुन्तक ने वर्ण्य वस्तु के स्वभाव की मनोहारिता की सिद्धि के लिए उत्कृष्ट मनोहरता वाली किसी वस्तु के साथ उसकी तुलना में उपमा का सद्भाव माना है। फलतः काव्य में उपमा-योजना की सार्थकता वर्ण्य वस्तु के सौन्दर्य-वर्धन में सिद्ध होती है।

८. अग्निपुराण में दण्डीकृत उपमा लक्षण को स्वीकार करके उसमें 'लोकव्यवहार' तत्त्व मिला दिया गया। जहाँ पर उपमान और उपमेय में अन्तर होते हुए भी सादृश्य बतलायी जाती है तथा उस सादृश्य के आधार पर लोकव्यवहार का प्रवर्तन होता है (अर्थात् सादृश्य के आधार पर चमत्कार होता है), उसे उपमा नामक सादृश्यालङ्कार कहा जाता है। स्पष्ट है- लोक व्यवहार के किञ्चित् सारूप्य के आधार पर एक वस्तु की दूसरे वस्तु के साथ यहाँ तुलना हुई है। दण्डी ने सादृश्य का प्रयोग अपने लक्षण में किया, किन्तु अग्निपुराण में सारूप्य का प्रयोग रूपगत समानता को निर्देशित करता है।

९. भोज ने उपमा में दो पदर्थों के बीच अवयवसामान्य वाञ्छनीय माना है। इनके लक्षण में प्रयुक्त 'प्रसिद्धेरनुरोधेन' पद लोकयात्रा प्रवर्तन के समीप है, ऐसा डॉ० शोभाकान्त मिश्र ने स्वीकारा है।[४४]

१०. हेमचन्द्र काव्यानुशासन में उपमा का लक्षण करते हुए 'हृद्यम्' पद का प्रयोग करते हैं और उसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं-
"हृदयग्रहणं च प्रत्यलङ्कारमुपतिष्ठते साधर्म्यं च देशादिभिर्भिन्नानां गुणक्रियादिसाधारणधर्मत्वम्।"

४३ का०सू०वृ०, पृ०-१८६।
४४ अलङ्कार धारणा –विकास और विश्लेशण, पृ०- ४३२।

और भी-
"हृदयं सहृदयहृदयाह्लादाकारि।"
अर्थात् भिन्न देश-काल आदि में स्थित दो वस्तुओं के गुण-क्रियादि साधारणधर्म के साधर्म्य के कारण उपमालङ्कार द्वारा सुहृदजनों को (सहज ही) आह्लाद की प्राप्ति होती है, उपमा का ऐसा स्वरूप यहाँ स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा है।

११. मम्मट ने उपमान और उपमेय में परस्पर भेद होने पर उसके साधर्म्य के वर्णन को उपम कहा है। लक्षण में 'भेदे' पद का ग्रहण अनन्वय से उपम के पार्थक्य के लिए किया गया है। 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' इत्यादि स्थलों मेम् भी सादृश्य का वर्णन है, परन्तु उपमान और उपमेय दोनों एक ही हैं। फलतः यहाँ उपमा नहीं अपितु अनन्वय अलङ्कार होता है।

१२. जयदेवकृत लक्षण "उपमा यत्र सादृश्यं लक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः" को कुवलयानन्द में स्पष्ट करते हुए अप्पयदीक्षित कहते हैं :-
"यत्र उपमानोपमेययोः सहृदयहृदयाह्लादकत्वेन चारूसादृश्यमुद्भूततयोल्लसति व्यङ्ग्यमर्यादां विना स्पष्टं प्रकाशते तत्रोपमालङ्कारः।" अपि च- "...सादृश्यलक्ष्मीश्चमत्कृतिजनकता। तद्विशिष्टसादृश्यमिति यावत्।"
स्पष्ट है कि उपमान और उपमेय का ऐसा सादृश्य जो काव्य में चमत्कृतित्व उत्पन्न करे, उसे उपमा कहते हैं।यहाँ उपमा पर बल देने की जरूरत नहीं होती, अभिधा से ही उक्त चमत्कृति बोध्य है।

१३. विश्वनाथकृत अलङ्कार लक्षण- एक वाक्य में उपमान और उपमेय पदार्थों का वैधर्म्य से रहित वाच्य सादृश्य उपमा है- ऐसा कहा गया है। यहाँ भी सादृश्य वाच्य ही है, व्यङ्ग्य नहीं। और यह सादृश्य वैधर्म्य से रहित है।

१४. शोभाकर मिश्र ने प्रसिद्ध गुण वाले उपमान के साथ अप्रसिद्ध गुण वाले उपमेय की समानता को ही उपमा कहा है।

१५. रुय्यककृत उपमा के लक्षण में प्रयुक्त - उपमानोपमेय, साधर्म्य, भेदाभेदतुल्यत्व और उपमा- ये चारों पद लक्षण की पूर्णता की दृष्टि से परिपूर्ण है।

१. पूर्णतया निर्दोष ही उपमानोपमेय बनाए जाएँ, यह तो सम्भव नहीं – ऐसी शंका करके कुछ अलङ्करिकों नें 'उपमानोपमेययोः' पद को व्यर्थ माना। किन्तु यहाँ प्रयुक्त उपमानोपमेय पद अप्रतीत उपमान और उपमेय की व्यावृत्ति भी करता है एवं यह भी संकेत करता है कि उपमान और उपमेय दोनों का उपादान आवश्यक है। अनन्वय में ('रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' आदि में) उपमेय ही उपमान बन जाता है। अतः इसकी व्यावृत्ति भी उपर्युक्त पद से हो जाती है।

२. साधर्म्य पद का उपादान उपमा को व्यतिरेक अलङ्कार से भिन्न करता है।

३. साधर्म्य के तीन भेद हैं। एक में भेद की प्रधनता है(जैसे- व्यतिरेक में), कहीं अभेद की प्रधानता है(जैसे- रूपक में) और कहीं भेद और अभेद दोनों की प्रधानता है जो कि भेदाभेदतुल्यत्व पद द्वारा उपमा के लक्षण में कथित है।

४. लक्षण में प्रयुक्त अन्तिम पद 'उपमा' अलङ्कार के नाम को सूचित कर रहा है।

१६. विद्याधरकृत उपमा के लक्षण में प्रत्येक पद रुय्यक के पद का अनुवादस्वरूप उपस्थापन मात्र ही है, ऐसा डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी का मत है।[४५]

१७. अप्पयदीक्षितकृत लक्षण के अनुसार, ऐसा वर्णन जो उपमितिक्रिया को निष्पन्न करता हो, उपमा है। अथवा अपने ही निषेध में जिसका पर्यवसान न हो, ऐसा सादृश्य वर्णन उपमा है। यह दोनों ही उपमा सामान्य का लक्षण है।
अर्थात् ऐसा सादृश्य वर्णन जो उपमिति की स्थिति बनात हो तथा अव्यङ्ग्य और दोषहीन हो, उपमा अलङ्कार है। अथवा जो सादृश्यवर्णन सादृश्यनिषेध में पर्यवसित नही होता हो, व्यङ्ग्य न हो और दोषयुक्त न हो, वह उपमा अलङ्कार है।

१८. पण्डितराज जगन्नाथ कृत उपमा लक्षण के अनुसार, वाक्यार्थ को सुशोभित करने वाले सुन्दर सादृश्य को उपमा कहते हैं। यहाँ सुन्दरं पद का तात्पर्य है- चमत्कार को उत्पन्न करने वाला। इस लक्षण में विशेष्य पद है-सादृश्यम् और विशेषण पद है-सुन्दरम् तथा अर्थोपस्कारकम्। 'सुन्दरम्' विशेषण होने के कारण अनन्वय आदि अलङ्कारों में रहने वाला सादृश्य उपमालङ्कार का विषय नहीं हो पाता है क्योंकि वह सादृश्य किसी प्रकार के चमत्कार को उत्पन्न नहीं करता,केवल द्वितीय उपमान भाव को सिद्ध करता है। इससे यह स्पष्ट है कि उपमाऽलङ्कार एक अर्थकृत चमत्कृति है और जहाँ भी सादृश्य चमत्कार का कारण होगा, वहीं उपमालङ्कार होगा।

उपसंहार :-

नाट्यशास्त्र से लेकर रसगङ्गाधर तक उपमा के जितने लक्षण प्राप्त होते हैं, उनके समन्वय से हमें उपमाऽलङ्कार का स्वरूप सम्यक् रूप से ज्ञात होता है। इसके लक्षण में हमें सादृश्य, सारूप्य एवं साधर्म्य इन तीन पदों का प्रयोग विभिन्न आचार्यों द्वारा मिलता है। स्थूल रूप में इन तीनों पदों को प्रायः समानार्थी ही समझा जाता है, किन्तु सूक्ष्म रूप में इनके बीच भेद शोध का विषय है। सामान्यतः स्वरूप से दो वस्तुओं के मध्य रूपगत समानता को, सादृश्य से उस समानता की प्रतीति को तथा साधर्म्य से वस्तुओं के असाधारण धर्म को उपमा के लक्षण का आधार बताया गया है। इसप्रकार सादृश्यमूलक अलङ्कारों में सर्वप्रमुख 'उपमा' के लक्षण की यह ज्ञानमूलक विधि है जो तीन भिन्न आयामों द्वारा उपमा के लक्षण को प्रस्तुत करता है। उपमा में अर्थसृजन की प्रक्रिया विवक्षामूलक है जो इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसमें कम गुण वाले उपमेय की तुलना अधिक गुण वाले उपमान से करके अर्थसृजन किया जाता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि उपमेय के किस पक्ष की (कौन-सी) विशेषता दृष्टान्त द्वारा कवि बतलाना चाहता है। फलतः उपम विवक्षामूलक और ज्ञानमूलक दोनों है। इस प्रकार काव्य में चारुत्व का सृजन भी उपमा द्वारा होता है। यह चारुत्व ही सुहृदों को चमत्कृत करता है जो वाच्य है, व्यङ्ग्य नहीं। अर्थात् उपमा अलङ्कार व्यङ्ग्य न होकर वाच्य है और वाच्य होकर भी चमत्कार उत्पन्न करके प्रतिपाद्य के प्रभाव में उत्कर्ष करता है। अतः इसकी अर्थोपस्कारकता और सुन्दरता स्वतःसिद्ध है।

सन्दर्भ-सूची:-

१. अलङ्कार सर्वस्व मीमांसा, डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, १९६५।

[४५] अलङ्कारसर्वस्व मीमांसा, पृ०-२१३।

२. अलङ्कारों का क्रमिक विकास, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, १९६७।
३. अलङ्कार सर्वस्वम्, डॉ० त्रिलोकीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वराणसी-२००१।
४. अलङ्कार धारणा : विकास एवं विश्लेषण, डॉ० शोभा कान्त मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७२।
५. अलङ्कर कौस्तुभ, कर्णपूर गोस्वामी, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, १९२६।
६. अलङ्कर शेखर, केशव मिश्र, निर्णयसगर प्रेस, बम्बई-१८९५।
७. अप्पयदीक्षितकृत कुवलयानन्द, नारायण शर्मा आचार्य, निर्णयसगर प्रेस, १९९७।
८. काव्यादर्श, शिवनारायण अवस्थी, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
९. काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली ।
१०. काव्यानुशासन (हेमचन्द्रकृत), चौखम्बा विद्याभवन. वाराणसी, २००१।
११. काव्यालङ्कार-सूत्राणि, हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-१९९५।
१२. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति,हिन्दीमाध्यमकार्यान्वियन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९९४।
१३. पण्डितराज जगन्नाथकृत रसगङ्गाधर।
१४. भामह काव्यालङ्कार, देवेन्द्र नाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, ।
१५. भरतमुनि प्रणित नाट्यशास्त्र, ओरिएण्टल इन्टीच्यूट्, वरोडा, १९३४।
१६. विश्वनाथकृत साहित्य दर्पण।
१७. कुन्तककृत वक्रोक्तिजीवितम् ।
१८. चित्रमीमांसा, काव्यमल सीरिज,निर्णयसागर-१९२६।
१९. सरस्वतीकण्ठभरण- भोज,काव्यमाला सीरिज, निर्णयसागर-१९३४।